# सिन्धी लोकसंस्कृति के अनमोल रत्न

*डॉ. किशनी फुलवानी

सूफी, सन्तों और महात्माओं की साधना स्थली सिन्ध में मेरा जन्म हुआ। विभाजन के बाद हमारा परिवार सिन्ध में हो रहा उन्हीं सूफियों के आश्रय में जो मानव मानव में कोई भेद नहीं मानते हैं। ये सूफी–सन्त वर्षों से पीर, मुर्शिद (गुरु) और सांई के रूप में पूजे जाते रहे और पूजे जाते हैं।

सन् 1966 में हमारा परिवार स्थाई रूप से भारत में बस गया लेकिन उम्र के हिसाब से उस भूमि की एक धुंधली सी याद मेरे हृदय में अब भी बसी हुई है।

भारत में बसने के बाद परिवार का माहौल उसी सूफीवाद से प्रभावित था। कहीं भी जाना हो या कोई शुभ कार्य करना हो परिवार का प्रत्येक सदस्य राम कृष्ण के साथ सूफी सांई को जरूर प्रणाम करते। पिता प्रभात को उठकर सिन्ध के सूफी, कवियों, संतों और महात्माओं के कलाम, बैत और भजन गाया करते थे। रात के समय पिताश्री छत पर लेटे–लेटे सूफी, सन्तों और महात्माओं के किसे सुनाया करते थे। हम सब भाई–बहन बड़ी दिलचस्पी से सुनते थे और सुनाने की जिद करते थे क्योंकि अपनी पाठ्य पुस्तकों में इन किस्सों का नितांत अभाव था।

सिन्ध की तरह भारत में भी सिन्धी अपने आराध्य उडेरोलाल ( वरूण देवता) के मेले लगाया करते हैं। मुझे बचपन से ही इन मेलों और उत्सवों में जाने का शौक रहा। इन मेलों और उत्सवों में भगत (लोकगायक) की मंडलियाँ आती हैं, जो कथाओं, भजनों और गीतों के अतिरिक्त सिन्धी प्रेमाख्याना व लोकगाथाओं के नायक– नायिकाओं की चारित्रिक विशेषताओं को कथा और गेय रूप में नृत्य के साथ प्रस्तुत करतीं तो मंडप में बैठे हुए स्त्री–पुरुष आँसू बहाते रहते। मैं हैरान सी देखती रह जाती। सोचती इसमें रोने की क्या बात है ? यही नहीं घर में माँ के पास सिन्धी महिलाएँ आतीं, अक्सर किसी सामाजिक प्रसंग पर उमर – मारवी या ससीपुन्हूँ की बात छिड़ जाती तो वही स्थिति देखने को मिलती।

सिन्धी परिवारों में विवाह या खुशी के अवसर पर महिलाएँ गीत गातीं तो वहाँ भी वही स्थिति देखने को मिलती। मुझे अच्छी तरह याद है–किसी महिला ने गीत गाया था, "दिला तरन्दो हलु, इंएं चवन्दो हलु, मुंखे मिलणो आहे, मेहार सां।" (सोहनी दिले (घड़े) के सहारे दरिया को पार कर रही थी, घड़े को कह रही थी कि घड़े तैरते चलो और कहते चलो कि मुझे मेहार से मिलना है।) ये बोल सुनकर बैठी हुई महिलाएँ ज़ोर–ज़ोर से ढोलक बजाने लगीं, ज़ोर से ढोलक पर चम्मच से थाप देने लगीं। लयबद्ध तालियाँ बजाने लगीं और कुछ नृत्य करने लगीं। खुशी के अवसर पर ही नहीं मृत्यु के अवसर पर भी महिलाएँ चुन्नी से मुँह ढक्कर रोती और पार (विलाप गीत) कहती जातीं। उनमें भी वे "पुन्हल" और "राणल" शब्दों का प्रयोग करती और मैं हैरान सी सुनती रहती। खाने–पीने की चीज़ सबसे पहले नियाणी को दी जाती । जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार नियाणी के हाथ से करवाये जाते। नियाणी के पैर सभी छू सकते हैं पर नियाणी अपने मायके के किसी सदस्य के पैर नहीं छूती। माँ, बेटे को भी लोरी गाकर सुलाती, तो बेटी को भी वही लोरी गाकर सुलाती। मुझे अच्छी तरह याद है भाई ने मुझसे कहा अरे, अरे ! यह तौलिया देना।" पिताजी तत्काल चिल्ला उठे – "बेवकूफ ! नियाणी को अरे, अरे बोलता है !"

घर में भाई की शादी हुई। भाभी को लक्ष्मी कहकर कई दिनों तक आराम व सम्मान के साथ रखा गया। कुछ दिनों के बाद भाभी द्वारा दरिया पूजन हुआ। उनके हाथों को धूप–दीप से सुवासित कर फिर घर का काम करवाया गया लेकिन झाड़ू नहीं लगवाया जाता था। पूछने पर माँ ने जवाब दिया, बहू घर की लक्ष्मी होती है। इसलिए परम्परा है कि झाड़ू नहीं लगवाया जाता। मैं सोचती माँ दुर्गा है, बेटी सरस्वती और बहू लक्ष्मी । मेरे घर में दादा–दादी नहीं थे पर देखती थी कि नानी 80–85 वर्ष की उन्हें आँखों से बहुत कम दिखता था, पालने में बैठी झूलती रहती थी । पोते–पोतियों को लोरी गाकर सुलाती थी। घर में कोई बड़ा या बच्चा बीमार हो जाता तो वैद्य की भाँति उपचार बताती रहती थी। अपनी दुकान में अति व्यस्त मामा नानी के पास तभी बैठे दिखाई देते थे जब उन्हें नानी से घर के किसी मुद्दे पर विचार–विमर्श करना होता था । नानी की सलाह के बिना घर का कोई भी कार्य नहीं होता था । यह थी समाज में बहू–बेटियों और बड़ों की स्थिति। जिस पर मुझे गर्व था, लेकिन मुझे क्या पता था कि इससे भी एक बड़ा पक्ष जो किसी सभ्यता और संस्कृति की आत्मा है भाषा, साहित्य और संगीत–वह भी उतना ही ऊँचा और महान है। यह जानने का अवसर मुझे तब मिला जब मैं अपनी उच्च शिक्षा पूर्ण कर पीएच.डी. सिन्धी लोकसाहित्य पर कर रही थी। तब मैंने जाना कि जिस विषय पर मैं शोध कार्य कर रही हूँ वह सिन्धी भाषा में एम. ए. स्तर तक पढ़ाया जाता है। सिन्धी अध्येताओं के लिए कितने गौरव की बात है कि उसका काव्य और साहित्य थार रेगिस्तान में संगीत के रूप में विद्यमान है । पाठ्य पुस्तकों में जो पढ़ाया जाता है वह गेय परम्परा के रूप में अशिक्षित लोकगायकों के पास सुरक्षित हैं। पाठ्य पुस्तकों में जिन कवियों को पढ़ाया जाता है उनका काव्य, उनके जीवन दर्शन की बहुत सी बातें हम इसे मौखिक परम्परा से प्राप्त कर सकते हैं जिनका समावेश हम इन पाठ्य पुस्तकों में नहीं कर सके। आज़ादी के 60 वर्ष बीत जाने के बाद भी भारत में किसी सिन्धी संस्थान, अकादमी या दानवीर ने इस धरोहर के संरक्षण एवं संवर्द्धन के कार्य को नहीं किया है।

मेरे अध्ययन के दौरान लोकगायक सिन्धी के अनेक कलाम, काफी और बैतों के प्रारम्भ की पंक्ति सुनकर खामोश हो जाते थे। लोक गायकों ने बताया कि इस वैभवशाली गेय परम्परा का कोई कद्रदान नहीं रहा है। न गाने के कारण वे इन्हें भूल गये हैं! मैं चुपचाप इस परम्परा की उपेक्षा को देखती रहती थी। आज दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि हमारे पुरखों ने सिन्धी सभ्यता और संस्कृति रूपी वृक्ष के फलने–फूलने के लिए किसी ज़मीन के टुकड़े की आवश्यकता को क्यों नहीं महसूस किया?

भारत में जातिवाद के बवंडर के सामने सिन्धी समुदाय जो भारत में पत्तों की भाँति बिखरा हुआ हैं, कैसे टिक पायेगा ? भारत में सिन्धी भाषा, साहित्य और संगीत की क्या दशा है, किसी से छिपी नहीं हुई है।

***सह–आचार्य**
**राजकीय महाविद्यालय**
**अजमेर (राज.)**